पूज्य लालचंदभाई मोदी का भेदज्ञान और सावधान मरण विधि का सम्बोधन श्रीमति लक्ष्मीबेन प्रेमचंद शाह के स्वर्गवास से कुछ दिन पहले (राजकोट - लन्दन, 1989, फोन)

(पूज्य भाईश्री द्वारा इस चर्चा में कैंसर पीड़ित स्वर्गीय लक्ष्मीबेन शाह (लन्दन) को टेलीफोन पर मार्मिक संबोधन दे रहे हैं जो कि हम सभी मुमुक्षुओं को प्रेरणारूप एवं अनुकरणीय है।)

लक्ष्मीबेन: आत्मा को देखना, अवलोकन करना और श्रद्धा करना - इसकी स्पष्टता कीजिए?

पूज्य भाईश्री: Hello! आत्मा है न! आत्मा है तो आत्मा को उसका ज्ञान भी होता है। अब इस ज्ञान में यदि तुम ऐसा श्रद्धान करो कि मुझे ये देह जानने में आ रही है और दुःख जानने में आ रहा है और पर जानने में आ रहा है तो तुम्हारा (जो) है वो उपयोग बहिर्मुख ही रहेगा। इसके बदले मुझे मेरा ज्ञान जानने में आ रहा है, ज्ञायक जानने में आ रहा है, मैं तो जाननेवाला हूँ और जाननेवाला ही जानने में आ रहा है, ऐसा रटने से भेदज्ञान ऐसा अच्छा हो जायेगा कि कदाचित् सम्यग्दर्शन भी हो जाये। यह एक महामंत्र है।

समस्त जगत ऐसा कहता है कि मैं पर को जानता हूँ.... तो जो ज्ञान का स्वभाव है वह ज्ञेय के सन्मुख होकर ज्ञेय को जानने का नहीं है। बल्कि ज्ञान का स्वभाव तो ज्ञायक के सन्मुख होकर ज्ञायक को जाने और ज्ञायक को जानते-जानते परपदार्थ भी इसमें (ज्ञान की स्वच्छता में) जानने में आ जाते हैं - ऐसा स्वपरप्रकाशक स्वभाव है। परंतु परसन्मुख होकर पर को जानना यह ज्ञान का स्वभाव ही नहीं (है)। ये तो इन्द्रियज्ञान है और अज्ञान है (और) वो तो दुःखरूप है। इन्द्रियज्ञान जिसको जानता है उसमें मोह-राग-द्वेष होता है। अर्थात् मेरे ज्ञान का स्वभाव तो मुझे ही जानने का है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता है। पर को जानता है ऐसा कहना व्यवहार है और वास्तव में यह व्यवहार तो अभूतार्थ है। इसलिए मुझे तो मेरे ज्ञान में मेरा आत्मा ही जानने में आता है।

आत्मा और ज्ञान दोनों तन्मय हैं। आत्मा कहो कि ज्ञान कहो (अथवा) ज्ञान का अनुभव कहो कि आत्मा का अनुभव (कहो)..... आत्मा का अनुभव कहो या ज्ञान का अनुभव (कहो) - एक ही (बात है)। ज्ञान और आत्मा एक वस्तु है और इन्द्रियज्ञान है वह एक भिन्न वस्तु है। इन्द्रियज्ञान अर्थात् क्या? जो पर को प्रसिद्ध करता है और जिसमें पर जानने में आता है वह मेरी वस्तु नहीं (है)। मुझे तो स्व जानने में आता है वही मेरी वस्तु है। इस तरह इन्द्रियज्ञान से जुदा (ऐसा) भेदज्ञान करते रहना और राग-द्वेष-मोह से, पुण्य-पाप के परिणाम से मेरा आत्मा एकदम जुदा है क्योंकि राग-द्वेष को मैं करता नहीं और दुःख को मैं भोगता नहीं (हूँ)। दुःख को मैं जानता भी नहीं (हूँ)। मैं तो सुखमय आत्मा हूँ और सुखमय आत्मा, ज्ञानमय आत्मा हूँ, इसलिए मुझे चौबीस घंटे मेरा आत्मा ही जानने में आता है। और जो यह है

वही मैं हूँ, नित्य हूँ, ध्रुव हूँ, चिदानंद हूँ। ये जो राग-द्वेष के भाव होते हैं, सुख-दुःख के भाव होते हैं ये मेरे से बाहर होते हैं। मेरे स्वभाव में इनका प्रवेश बिल्कुल नहीं होता। इससे मैं जुदा (हूँ), राग से जुदा हूँ - इस प्रकार बारंबार, बारंबार जाननेवाले की (ज्ञायक की) तरफ तुम्हारा झुकाव हो जाएगा तो तुम्हारा काम हो जाएगा। यही समय-समय (पर) विचार करना। बोलो प्रेमचंदभाई!

प्रेमचंदभाई: हाँ! तो इसमें अवलोकन करना, जानना - इसमें आ गया सब कुछ?

पूज्य भाईश्री: आ गया इसमें, बस। आत्मा को ही जाना और आत्मा का ही अवलोकन (करना) सब इसमें आ गया।

प्रेमचंदभाई: इसलिए इसमें देखने के लिए कहते हैं कि प्रत्यक्ष तो आत्मा नहीं दिखता परन्तु उसका अवलोकन करना और उसके अस्तित्व का स्वीकार करना?

पूज्य भाईश्री: स्वीकार करने पर उसको जब आनंद आए न, तब (आत्मा) प्रत्यक्ष हो गया - ऐसा कहलाता है। आनंद आये न, तब वेदन से आत्मा प्रत्यक्ष हो गया कहलाता है। प्रदेश जानने में नहीं आते.... प्रदेश जानने में नहीं आते परन्तु आनंद का वेदन आया न!

प्रेमचंदभाई: हाँ! तब प्रत्यक्ष् (कहलाया)।

पूज्य भाईश्री: अँधा व्यक्ति शक्कर खाए तो वो प्रत्यक्ष कहलाता है। जैसा अँधा शक्कर खाए तो प्रत्यक्ष कहलाता है और देखनेवाला खाए तो भी प्रत्यक्ष कहलाता है। इसी प्रकार आनंद का वेदन आये सम्यग्दर्शन के काल में, तब आत्मा वेदन प्रत्यक्ष हो गया कहलाता है भले प्रदेश प्रत्यक्ष हों नहीं।

प्रेमचंदभाई: हाँ! इसलिए पूज्य गुरुदेव श्री के प्रवचन में अवलोकन करना, दृष्टि करना, दर्शन करना (ऐसा आता है)।

पूज्य भाईश्री: बस यही (है वो)। अंतर्मुख.... अंदर ही देखना (है), बाहर देखना बंद करना। पर्यायार्थिक चक्षु सर्वथा बंद कर देना और खुले हुए द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा आत्मा को देखना। बस इतना है। मेरे ज्ञान में ज्ञायक ही जानने में आता है। जैसे सूर्य के प्रकाश में सूर्य जानने में आता है इसी प्रकार मेरे ज्ञान-प्रकाश में मेरा आत्मा जानने में आता है - ऐसा स्वीकार करना।

मीनाबेन: बापा! आत्मा का अनुभव किस प्रकार करना?

पूज्य भाईश्री: अनुभव ऐसे करना कि मेरे ज्ञान में मेरा ही आत्मा जानने में आता है। दूसरा कुछ जानने में नहीं आता। सूर्य के प्रकाश में सूर्य जानने में आता है। दीपक के प्रकाश में दीपक जानने में आता है, घड़ा जानने में नहीं आता। मेरे ज्ञान में दूसरा कुछ जानने में नहीं आता, मेरा आत्मा ही जानने में आता है। बस उसमें ज्ञान में ज्ञानमय आत्मा है और जाननेवाला ही जानने में आता है, दूसरा कुछ जानने में आता नहीं (है) - ऐसा बारंबार अभ्यास करना।

पर का करनेवाला नहीं और पर का जाननेवाला भी नहीं। मैं तो मात्र जाननेवाले को ही जानता हूँ। जाननेवाला हूँ और जाननहार ऐसा आत्मा मुझे समय-समय (पर) जानने में आता है। आबाल-गोपाल सबको जानने में आता है। यह पर जानने में आता है, पर जानने में आता है, पर जानने में आता है - ऐसा (मानना) थोड़े समय के लिए बंद कर दो..... बस! इसमें आत्मा का अनुभव होता है।

मीनाबेन: तो आत्मा कैसा है यह तो जानना है न पहले?

पूज्य भाईश्री: हाँ! आत्मा ज्ञान और आनंदमय है और अंदर में जाने पर ज्ञान और आनंद का अनुभव तुम्हें होगा। यह जो दुख का और राग-द्वेष का अनुभव होता है न, क्रोध-मान-माया-लोभ का..... वो अनुभव छूट जाता है और ज्ञान का..... मात्र ज्ञान का अनुभव होता है। उस ज्ञान के साथ आनंद का अनुभव होता है। आत्मा का आनंद है.... आत्मा आनंद से भरा हुआ है। अन्दर में जायें न तो उस आनंद का अनुभव होता है। अंदर डुबकी लगाना चाहिए।

लक्ष्मीबेन: (तबियत के बारे में बताते हुए)

अभी और तत्त्व की बात कीजिये।

पूज्य भाईश्री: हाँ देखो! मेरा जो आत्मा है ये आत्मा ही मुझे मेरे ज्ञान में जानने में आता है। ये देह है, ये वास्तव में मुझे जानने में आता ही नहीं क्योंकि देह है वह भिन्न है और जो राग-द्वेष, सुख-दुःख के भाव हैं वो भी मेरे से जुदा हैं .... इनसे मैं जुदा (हूँ)। जो वर्तमान में मुझे ज्ञान हो रहा है वह ज्ञान देह का नहीं होता परन्तु आत्मा का ज्ञान होता है। (अज्ञान में) ऐसा लगता है कि जैसे मुझे देह का ज्ञान हुआ परन्तु देह का ज्ञान नहीं होता क्योंकि ज्ञान तो आत्मा का है। इसलिए ज्ञान जिसका (आत्मा को) हो (तो) उसका ही (ज्ञान निरंतर) होता रहता है। परंतु जिसको अज्ञानदशा में ख्याल नहीं रहता है, उसको ऐसा लगता है कि जैसे देह का ही मुझे ज्ञान हुआ, मुझे इस दुःख का ज्ञान हुआ। मुझे दुःख हुआ या (फिर) मुझे दुख का ज्ञान हुआ। परंतु इनसे (शरीरादिक से) जुदा आत्मा है और ज्ञान है वो आत्मा से अनन्य-अभिन्न है। अतः प्रत्येक जीव को प्रत्येक समय आत्मा का ज्ञान हो रहा है..... परन्तु मुझे आत्मा का ज्ञान होता है यह जीव भूल जाता है। और जब देह का ज्ञान हुआ, पुत्र-पुत्री का मुझे ज्ञान हुआ (तो) ये पुत्र-पुत्री मेरे हैं ऐसी उनमें ममता करता है। परंतु जब स्वयं वहाँ से चेत जाता है (कि) - अरे! ये तो परपदार्थ हैं। मेरा और इनका कोई लेना-देना नहीं है। और मैं तो इनको जानता ही नहीं हूँ वास्तव में तो..... क्योंकि ज्ञान जिसका है उसको जानता है।

जैसे प्रकाश है तो वो दीपक का प्रकाश है। तो जो प्रकाश है वो दीपक को प्रसिद्ध करता है। ये प्रकाश जो है वो कहीं घट-पट को, सोफासेट को या पर को प्रसिद्ध नहीं करता क्योंकि प्रकाश और दीपक एकमेक हैं। इसलिए जिसका जिससे एकमेकपना होता है उसको ही प्रसिद्ध करता है। ऐसे ही आत्मा का ज्ञान आत्मा के साथ एकमेक है, इस कारण (से) ज्ञान में आत्मा जानने में आता है।

ज्ञान आत्मा को प्रसिद्ध करता है, पर को प्रसिद्ध नहीं करता।

मुझे तो जाननहार ही जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता - ऐसे बारंबार.... उपयोग में उपयोग है, उपयोग में आत्मा है (इस प्रकार अभ्यास करना), राग-द्वेष के परिणाम उपयोग में नहीं हैं। उपयोग जुदी वस्तु है (और) राग जुदी वस्तु है। उपयोग भिन्न है, देह भिन्न है और उपयोग तो आत्मा का है। तो उस उपयोग में आत्मा ही जानने में आता है, आता है और आता है। (आत्मा) जानने में आ ही रहा है परंतु उसको जीव मानता नहीं है इसलिए अज्ञानदशा में दुखी होता है। बाकी है तो सरल में सरल उपाय कि हमेशा ज्ञान आत्मा का (ही) होता है। प्रकाश सूर्य का ही होता है, प्रकाश दीपक का ही होता है। प्रकाश दूसरे का नहीं होता। इस प्रकार प्रत्येक जीव को ज्ञान आत्मा का ही होता है। आत्मा ही उसमें जानने में आता है और आत्मा और ज्ञान एकमेक है। ऐसे बारंबार.... ज्ञान

और आत्मा एकमेक होकर जानते हैं - ऐसा बारंबार विचार करने पर अपने (को) दुःख कम हो जाता है। दुख टूट जाती है। दुःख के साथ एकताबुद्धि टूट जाती है और आत्मा का स्वभाव दृष्टि में आने पर आत्मिक आनंद आता है और मोक्षमार्ग शुरू हो जाता है। ऐसा करते-करते एकाग्रता बढ़ती जाती है। बढ़ते-बढ़ते उपयोग उसमें लीन हो जाता है (और) लीन होते-होते आत्मा को केवलज्ञान प्रगट हो जाता है। आत्मा का ही ज्ञान है इसलिए ज्ञान जिसका है (अर्थात्) आत्मा का (है), उसको ही ज्ञान प्रसिद्ध करता है।

ज्ञान तो कोई शास्त्र का नहीं है, देव-गुरु-शास्त्र का ज्ञान नहीं होता (है)। ज्ञान तो आत्मा का होता है। (ज्ञान) आत्मा में ही होता है और आत्मा को ही प्रसिद्ध करता है। इस प्रकार ज्ञान को आत्मा की तरफ ले जाओ कि मुझे मेरे ज्ञान में पर जानने में नहीं आता क्योंकि पर तो भिन्न है। मेरे ज्ञान में मेरा आत्मा ही जानने में आता है। ऐसे बारंबार-बारंबार-बारंबार विचार करने पर एक समय ऐसा आता है कि साक्षात् आत्मा का दर्शन हो जाता है।

(अन्य दिवस पर की गई टेलीफोन पर चर्चा)

राजेशभाई: तबियत बहुत ख़राब है अभी....

पूज्य भाईश्री: देखो! यह रोग ही ऐसा है। भाई! यह रोग ही ऐसा है। यह जो कैंसर का रोग है न भाई! यह तो भयंकर रोग है। परंतु आत्मा तो मरता नहीं (है)। आत्मा बिल्कुल (मरता नहीं)। क्षेत्र बदलता है। इस क्षेत्र में जो है वो दूसरे क्षेत्र में चला जाता है। जैसे (हम) कपड़े बदलते हैं परन्तु मनुष्य तो वही का वही होता है। बराबर न! इसी प्रकार यह एक मोटा कपड़ा शरीर का है। यह शरीर छूट जाता है और दूसरा शरीर मिल जाता है - ऐसा तो होता ही रहता है। इसलिए ऐसी कोई घटना घटे तो चिंता नहीं करना और आयुष्य हो तो कोई किसी प्रकार की परेशानी नहीं (है)। (जब तक) आयु है तब तक तो जीवन रहेगा ही।

कोई दवाई लेनी है?

राजेशभाई: ना! वो भी नहीं ले सकते हैं कोई। ..... मैं आपकी टेप उतार लूँगा तो माँ (अस्पताल में) थोड़ा सुनेंगी। उनका पीड़ा पर बहुत लक्ष जाता है अभी, क्योंकि पीड़ा बहुत है।

पूज्य भाईश्री: हाँ! पीड़ा बहुत है।

राजेशभाई: तो आपकी बात सुनेंगी तो (उनको) शांति मिलेगी और उनका कल्याण होगा।

पूज्य भाईश्री: सुनना हो! मैं (जो) कहता हूँ वो तुम सुनना।

राजेशभाई: टेप (में रिकार्ड) करता हूँ बापा!

पूज्य भाईश्री: हाँ कर ले!

आत्मा ज्ञाता है, कर्ता नहीं (है) और भोक्ता नहीं (है)। जो दुःख होता है न इसका भोक्ता आत्मा नहीं (है)। इस भोक्ता धर्म को ज्ञान जानता है। ज्ञाता जानता है, पर दुःख को भोगना - ऐसा आत्मा का स्वभाव नहीं (है)। ज्ञाता भाव जुदा है और भोक्ता धर्म जुदा है। जो भोक्ता धर्म पर्याय में है.... (अर्थात् जो) दुःख भोगता है वो (कोई) दूसरा भोगता है। और मैं तो अभोक्ता हूँ - ऐसे अभोक्ता स्वभाव को

जानने पर दुःख को भोगने का जो दुःख है वह एकदम घट जायेगा - यह महामंत्र है। दुःख (जो) भोगती है वो (तो) पर्याय भोगती है। उस परिणाम से मेरा आत्मा जुदा है। मैं तो जाननहार तत्त्व हूँ। ज्ञान तत्त्व में दुःख तत्त्व आता नहीं और दुःख तत्त्व में ज्ञान तत्त्व जाता नहीं। ज्ञान जुदा है और दुख जुदा है।

आत्मा ज्ञानमय है। आत्मा जाननेवाला है, दुःख का वेदन करनेवाला नहीं (है)। (आत्मा) दुःख का मात्र जाननेवाला है - यह भी व्यवहार है। इस दुःख से भिन्न जिस ज्ञान में आत्मा जानने में आता है वह मेरा स्वरुप है। ये (जो) दुःख है वह मेरा स्वरुप नहीं है। ये तो विभाव है। (ये तो) पुद्गल के भाव हैं, देह का धर्म है अथवा तो विभाव का धर्म है। भोक्ता नाम का आत्मा में एक धर्म है कि पर्याय दुःख भोगती है - ये बात सच है। परन्तु पर्याय भोगती है इसलिए आत्मा भी उस दुख को भोगता है ऐसा बनता नहीं है। क्योंकि स्वभाव और विभाव, आत्मा और आस्रव बिल्कुल भिन्न-भिन्न हैं। अर्थात् एक भोगे और दूसरा जानता तो जरूर है। परन्तु एक दुःख भोगे तो दूसरा भी दुःख भोगेगा ही - ऐसा नहीं है।

आत्मा तो ज्ञानानंद परमात्मा है। वो तो केवल जाननहार है। दुःख को भी (मात्र) जाननेवाला है, दुःख को भोगनेवाला नहीं (है) क्योंकि दुःख से भिन्न अभोक्तृत्व शक्ति है आत्मा में। इसलिए अभोक्ता स्वभाव मेरा है। ये भोक्ता धर्म है ये मेरा नहीं (है); ये (तो) पर्याय का धर्म है। ये (पर्याय) भोगे तो भले भोगे पर मैं तो इससे जुदा जाननहार हूँ और मैं अभोक्ता हूँ। दुःख को भोगना - ये मेरा स्वभाव नहीं है। ऐसे बारंबार दुःख की तरफ से उपयोग समेटकर और उपयोग को उपयोग में लगाना कि मैं तो जाननहार हूँ, चिदानंद आत्मा हूँ। मेरे में राग नहीं, द्वेष नहीं, दुःख नहीं (और) सुख नहीं। मैं तो अनंत-अनंत-अनंत सुख का पिंड, आनंद का धाम आत्मा हूँ। मेरे में दुःख का प्रवेश नहीं हो सकता। दुःख भिन्न है और मैं भिन्न हूँ। मैं जाननहार हूँ।

मैं दुखी नहीं हूँ। जिसमें दुःख होता है उससे जुदा रहकर दुःख को जानूँ किंतु दुःख को भोगूँ - ये मेरे स्वभाव में नहीं (है)। इस प्रकार बारंबार भेदज्ञान का चिंतवन करने से दुःख कम हो जाता है - यह दुःख कम करने का महामंत्र है। और यदि इस दुःख से लक्ष छूट जाये और आत्मा में लक्ष जाये तो दुःख दुःख में रह जाए और आनंद का अनुभव हो जाए। इस प्रकार भेदज्ञान का बारंबार विचार करना।

माँ से कहना आपने तो बहुत सुना है। लक्ष्मीबेन ने तो बहुत सुना है और उन्होंने बहुत वांचन (भी) किया है, विचार भी बहुत किया है। और तुम्हारे घर में तो सब धार्मिक संस्कार हैं..... प्रेमचंदभाई को, तुम को, सभी को..... (घर में) धार्मिक वातावरण है। अभी तो सावधान रहना है अपने को एकदम। जब दुःख बहुत अधिक हो जाए तब तो बहुत सावधान रहना, एकदम alert (सतर्क)।

दुःख से आत्मा जुदा जाननेवाला-देखनेवाला है। दुःख का भोगनेवाला मैं नहीं - इस प्रकार बारंबार दुःख से व्यावृत्त होकर पीछे हटकर और निज आत्मा का स्मरण करना। बस! आत्मा का स्मरण करना, पंच-परमेष्ठी का स्मरण करना, णमोकार मंत्र का स्मरण करना, बस। एक अरिहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु जी शरण हैं, (अन्य) मुझे कोई शरण नहीं। निश्चय से तो मेरा शुद्धात्मा ही शरण है, दूसरा कोई शरण नहीं (है)। व्यवहार से देव, शास्त्र और गुरु शरण हैं (और) निश्चय से तो निज, स्वयं

का परमात्मा है वही शरण है। मैं इसकी शरण में जाता हूँ। मैं तो आत्मा हूँ - ऐसा बारंबार-बारंबार विचार करने से दुःख की जो मात्रा है, वो दुख की मात्रा घटती है। ये महामंत्र है - माँ को सुनाना।

राजेशभाई: (माँ को) सल्लेखना लेने का भाव है।

पूज्य भाईश्री: ऐसा? देखो! समाधिमरण..... सम्यग्दृष्टि को समाधिमरण होता है। दूसरे (जीव) को..... सम्यग्दर्शन के बिना समाधिमरण नहीं होता परन्तु बहुत सावधान मरण होता है। (जीव) सावधानी में जाए; आत्मा की सावधानी में (परलोक गमन करे).... आत्मा का विचार करते-करते, आत्मा के स्वरुप का घोलन करते-करते जाये - ऐसा (तो) बन सकता है।

राजेशभाई: ok (ठीक)। और यदि माँ को एकदम पीड़ा हो तो pain-killer (दर्द-निवारक दवा) दे दूँ क्या दुःख को कम करने के लिए? क्या है कि न ज्ञान की शक्ति जरा कम हो जाएगी....

पूज्य भाईश्री: ऐसा है क्या? ये बराबर नहीं है वैसे तो। अपनी धार्मिक दृष्टि से ये बराबर नहीं है। उनका यदि ज्ञान कुंठित हो जाये तो ये बराबर नहीं कहलाता, पर डॉक्टर तो ऐसा ही कहते हैं।

राजेशभाई: तो हमें क्या करना चाहिए अंत समय तक?

पूज्य भाईश्री: अपने को ऐसा करना है कि पीड़ा को सहन भले करे पर हमें वो लाइन नहीं पकड़नी। उनकी मूल आत्मा की जागृति बंद हो जाये और विचार करने की शक्ति कुंठित हो जाए, और उनका ज्ञान कुंठित हो जाये - ऐसा (काम) हमको अब नहीं करना है। और दुःख कम हो जाये ऐसी दवायें दे देना.... परन्तु ज्ञान बंद हो जाये ऐसी दवायें नहीं देना - इतना (तो) दोनों (दवाओं) का भेद करना। Pain-killer (दर्द-निवारक दवा) में दुःख कम हो जाता है ऐसी दवायें (भी) होती हैं। परन्तु (जिस दर्द-निवारक दवा से जीव) एकदम बेसुद हो जाये, injection (इंजेक्शन) दें तो - ऐसा नहीं करना। फिर भी नींद का इंजेक्शन देते हैं ये (डॉक्टर) लोग.... नींद का तो देना।

राजेशभाई: हाँ! नींद का इंजेक्शन चलेगा पर वो वाला (बेहोशी वाला) तो नहीं न?

पूज्य भाईश्री: (हाँ!) वो (बेहोशी की दवा) वाला नहीं (देना)। बस, वो नहीं (देना).... मेरे विचार से (तो) नहीं (देना)।

राजेशभाई: तो आखिरी घड़ी तक आत्मा का ही विचार करना.... बराबर है न?

पूज्य भाईश्री: बस! आत्मा का विचार करना। तुम भी उनको (माँ को) जब तक वो सुनती हों धर्मध्यान की बातें सुनाना कि - मैं ज्ञायक हूँ, केवल जाननहार हूँ, देह से जुदा हूँ, दुःख से भी जुदा हूँ और मुझे यह दूसरा कुछ जानने में आता नहीं। मेरा ज्ञान जानने में आता है, मुझे ज्ञायक जानने में आता है। ज्ञान जानने में आता है, ज्ञायक जानने में आता है, मैं तो शुद्धात्मा हूँ - ऐसे शब्द उनके कान पर बारंबार डालना है बस। इसमें सावधानी से मरण होगा। समझ गए? इस प्रकार से सावधानी से मरण हो तो उसे व्यवहार से समाधि कहते हैं पर निश्चय से समाधि नहीं कहते। क्योंकि निश्चय से तो सम्यग्दृष्टि को ही समाधिमरण होता है। जब तक आत्मा का अनुभव नहीं होता तब तक समाधिमरण नहीं कहलाता पर सावधान मरण कहलाता है अथवा व्यवहार समाधिमरण कहलाता है। व्यवहार.... समझ गए न?

राजेशभाई: तो.... माँ को वो अणुव्रत लेना चाहिए?

पूज्य भाईश्री: ना! ना! नहीं लेना। कुछ नहीं लेना।

राजेशभाई: व्रत-तप कुछ नहीं लेना न?

पूज्य भाईश्री: नहीं! कोई व्रत-तप अभी कुछ नहीं। अभी तो तुम (उनको) भेदज्ञान का विचार करने को कहो। क्योंकि अणुव्रत और प्रतिज्ञा और सल्लेखना आदि बहुत होते हैं न, ये (तो) सम्यग्दृष्टि साधक को होते हैं.... इनको नहीं होते। समझ गए? इसलिए ऐसे झूठे व्यवहार से उनका अहित हो जायेगा। समझ गए? उनको व्रत और नियम और प्रत्याख्यान यदि करवाओगे न तो उनका नुकसान होगा। इसलिए अपने को तो अपनी लाइन.... भेदज्ञान की (लाइन कि) मैं जाननहार हूँ, मैं शुद्धात्मा हूँ और यही मुझे जानने में आता है - ऐसा ही रटण तुम उनको कराओ, बस। और व्रत और नियम और प्रत्याख्यान और संथारा और समाधिमरण ये सब तुम यदि करोगे न तो पूरी लाइन बदल जायेगी। नहीं! नहीं! कुछ जरूरत नहीं। बिल्कुल!

राजेशभाई: बस खाली भेदज्ञान न?

पूज्य भाईश्री: बस ज्ञान का ..... करो। ज्ञान को पानी पियो। अमृत पानी पियो ज्ञान का, बस। तुम उनको ज्ञान की लाइन पर ही ले जाओ, ज्ञायक पर ले जाओ, इसमें ज्यादा अच्छा रहेगा।

राजेशभाई: तो आखिरी घड़ी तक कैसे भी करके उनको ज्ञान में जागृत ही रखना है?

पूज्य भाईश्री: जागृत रखना उनको बस। तुम तो उनको सावधानी में रखो कि मैं तो जाननहार हूँ, जाननहार जानने में आ रहा है, दुःख से मेरा आत्मा भिन्न है, मैं दुःख का वेदन करता नहीं, दुःख से जुदा मैं आत्मा हूँ, ये चिदानंद आत्मा मैं हूँ, परमात्मा हूँ बस। ये उनको टेप सुनाकर बस इसी लाइन पर ले जाओ।

(टेप सुनने के बाद का टेलीफोन)

राजेशभाई: सुना दिया था।

पूज्य भाईश्री: हाँ! सुना दिया था?

बस! समता रखना। समता रखें सब लोग तो जिस समय जो होना हो वो होता ही है। बस! और यहाँ से ऐसी भावना लेकर जाती हैं तो अच्छी गति में (ही) जायेंगी। बस! उनकी गति अच्छी है, कोई चिंता नहीं करना। बाकी ये कैंसर का (जो) दर्द है इसमें बाद-बाद में बहुत पीड़ा होती है। पीड़ा होती है यह बात तो सच्ची है।

राजेशभाई: परन्तु जागृति रहे इस प्रकार ही काम करना है न?

पूज्य भाईश्री: बस! जागृति रखो और दूसरा कुछ नहीं। बस!